श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्*

निम्न स्तुति के रचयिता गन्धर्वराज श्रीपुष्पदन्त थे। इनकी यह रचना पुष्पदन्त विरचित श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्र के नाम से प्रसिद्ध हुई।

।। श्रीपुष्पदन्त उवाच ।।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः।। 1 ।।

(गन्धर्वराज पुष्पदन्त भगवान् शंकर की स्तुति के उपक्रम में कहते हैं-) 'हे पाप-हरण करनेवाले शंकरजी! आपकी महिमा के आर-पार के ज्ञान से रहित सामान्य(अल्पज्ञानवान्) व्यक्ति के द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप- (माहात्म्य-) वर्णन के अनुरूप नहीं है तो (फिर) ब्रह्मादि देवों की वाणी भी आपकी स्तुति के अनुरूप नहीं है (क्योंकि वह भी आपके गुणों का सर्वथा वर्णन नहीं कर सकते)। किंतु जब सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि(की शक्ति) के अनुसार स्तुति करते हुए उपालम्भ के योग्य नहीं माने जाते हैं, तब मेरा भी स्तुति करने का (यह) प्रयास अपवादरहित ही होना चाहिये(यह प्रयास खण्डनीय नहीं है)' ।। 1 ।।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः।। 2 ।।

'आपकी महिमा वाणी और मन की पहुँच से परे है। आपकी उस महिमा को वेद भी (आश्चर्य-) चकित (भयभीत) होकर (निषेधमुखेन) नेति-नेति कहते हुए आशयरूप में वर्णन करते हैं। फिर तो ऐसे अचिन्त्य महिमामय आप किसकी स्तुति के विषय (वर्ण्य) हो सकते हैं? अर्थात् किसी की स्तुति तदर्थ समर्थ नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण न जाने कितने प्रकार के हैं अर्थात् अनन्त हैं। फिर भी हे प्रभो! नवीन परम रमणीय आपके (सगुण) रूप के विषय में वर्णन के लिये किसका मन आसक्त नहीं होता और किसकी वाणी उसमें प्रवृत्त नहीं होती? अर्थात् - सबके मन-वचन सगुणरूप में संलग्न हो जाते हैं- सभी अपनी वाणी को प्रेरित कर वर्णन में लगा देते हैं'।। 2 ।।

मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-

---

* इस स्तोत्र के कई पाठ प्राप्त होते हैं। परन्तु यहाँ पर गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा सरल हिन्दी तथा पद्यानुवादसहित प्रकाशित 'शिवमहिम्नःस्तोत्र' से ही पाठ एवं अर्थ लिये गये हैं।

स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता।। 3 ।।

'हे भगवन्! मधु से सिक्त-सी अत्यन्त मधुर एवं परम उत्तम अमृतरूप वेदवाणी की रचना करनेवाले देवाधिदेव ब्रह्मदेव की वाणी भी क्या आपके गुणों को प्रकाशित कर आपको चमत्कृत कर सकती है? (कदापि नहीं) फिर भी हे त्रिपुरारि! मेरी बुद्धि आपके गुणानुवादजनित पुण्य से अपनी इस (मलिन वासना से भरी अतएव अपवित्र) वाणी को पवित्र करने के लिये (ही) आपके गुण-कथन के द्वारा (की जानेवाली) स्तुति के विषय में उद्यत है(न कि अपने स्तुति-कौशल से आपका अनुरञ्जन करूँगा- यह मेरा अभिप्राय है)'।। 3 ।।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः।। 4 ।।

'हे वर देनेवाले शिवजी! आप विश्व की सृष्टि, पालन एवं संहार करते हैं- ऐसा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद- (वेदत्रयी) निष्कर्षरूप से वर्णन करते हैं। इसी प्रकार तीनों गुणों से विभिन्न त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) में बँटा हुआ जो इस ब्रह्माण्ड में आपका वह प्रख्यात (रचनात्मक, पालनात्मक एवं संहारात्मक) ऐश्वर्य है, उसके विषय में खण्डन करने के लिये कुछ जड़बुद्धि अकल्याणभागी (मन्दों) अभागों (नास्तिकों) को मनोहर लगनेवाला पर वास्तव में अशोभनीय या हानिकारक व्यर्थ का मिथ्याप्रलाय (बकवाद) उठाते हैं'।। 4 ।।

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः।। 5 ।।

'हे वरद भगवन्! वह विधाता त्रिभुवन का निर्माण करता है तो उसकी कैसी चेष्टा होती है? उसका स्वरूप क्या है? फिर उसके साधन क्या हैं? आधार अर्थात् जगत् का उपादान कारण क्या है?-इस प्रकार का कुतर्क, सब तर्कों से परे अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले आपके विषय में निराधार एवं नगण्य (उपेक्षित) होता हुआ भी सांसारिक (साधारण) जनों को भ्रम में डालने के लिये कुछ मूर्खों को वाचाल बना देता है'।। 5 ।।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-

मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे।। 6 ।।

'हे देव! श्रेष्ठ अवयववाले (शरीरधारी) होते हुए भी ये लोक क्या बिना जन्म के ही हैं? (नहीं, कदापि नहीं;) क्या विश्व की सृष्टि-पालन-संहार आदि क्रियाएँ बिना(अधिष्ठान) कर्त्ता के माने सम्भव हो सकती हैं? या ईश्वर के बिना कोई सामान्य जीव ही अधिष्ठान या कर्त्ता हो सकता है? (नहीं; क्योंकि) यदि असमर्थ जीव ही कर्त्ता है तो चौदह भुवनों की सृष्टि के लिये उसके पास क्या साधन हो सकता है? (इस प्रकार आपके अस्तित्व के प्रमाण सिद्ध होने पर भी) यतः(क्योंकि) वे (जड़बुद्धि) शङ्का करते हैं, अतः वे बड़े अभागी हैं'।। 6 ।।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। 7 ।।

'ऋक्, यजुः, साम-ये वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतमत, वैष्णवमत आदि विभिन्न मत-मतान्तर हैं। इनमें (सभी लोग हमारा) यह मत उत्तम है, हमारा मत लाभप्रद है (दूसरों का नहीं;)-इस प्रकार की रुचियों की विचित्रता से सीधे-टेढ़े नाना मार्गों से चलनेवाले साधकों के लिये एकमात्र प्राप्तव्य (गन्तव्य) आप ही हैं। जैसे सीधे-टेढ़े मार्गों से बहती हुई सभी नदियाँ अन्त में समुद्र में ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुयायी आपके ही पास पहुँचते हैं'।। 7 ।।

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम्।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति च भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।। 8 ।।

'हे वरदानी शङ्कर! बूढ़ा बैल, खटिये (चारपाई) का पावा, फरसा, चर्म, भस्म, सर्प, कपाल-बस इतनी ही आपके कुटुम्ब-पालन की सामग्री है। फिर भी इन्द्रादि देवताओं ने आपके कृपा-कटाक्ष से ही उन अपनी विलक्षण(अतुलनीय) समृद्धियों(भोगों) को प्राप्त किया है; किन्तु आपके पास भोग की कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि विषय-वासनारूपी मृगतृष्णा स्वरूपभूत चैतन्य आत्माराम में रमण करनेवाले को भ्रमित नहीं कर पाती है'।। 8 ।।

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।

समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता।। 9 ।।

'हे त्रिपुरारि! कोई वादी इस सम्पूर्ण जगत् को ध्रुव (नित्य) कहता है, कोई इस सबको अध्रुव (असत् या अनित्य) बताता है और कोई तो विश्व के समस्त पदार्थों में कुछ नित्य और कुछ अनित्य है-ऐसा कहता है। उन सब वादों से आश्चर्य-चकित-सा मैं उन्हीं वादों (स्तुति-प्रकारों) से आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं हो रहा हूँ; क्योंकि मुखरता (वाचालता) धृष्ट होती ही है (उसे लज्जा कहाँ)'।। 9 ।।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति।। 10 ।।

'हे गिरिश! (अग्नि-स्तम्भ के समान) आपका जो लिङ्गाकार तैजस रूप (ऐश्वर्य) प्रकट हुआ उसके ओर-छोर जानने के लिये ऊपर की ओर ब्रह्मा तथा नीचे की ओर विष्णु बड़े प्रयत्न से गये; पर, (वे दोनों ही) पार पाने में असमर्थ रहे। तब उन दोनों ने श्रद्धा और भक्ति से पूर्ण बुद्धि से नतमस्तक हो आपकी स्तुति की। (तब उनकी स्तुति से प्रसन्न हो) आप उन दोनों के समक्ष स्वयं प्रकट हो गये। हे भगवन्! श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी आपकी सेवा (स्तुति) क्या फलीभूत नहीं होती? (अर्थात् अवश्य फलीभूत होती है)'।। 10 ।।

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान्।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्।। 11 ।।

'हे त्रिपुरारि! दशमुख रावण ने तीनों भुवनों का निष्कण्टक राज्य बिना प्रयत्न (अनायास) प्राप्त कर जो अपनी भुजाओं की युद्ध करने की खुजलाहट न मिटा सका (प्रतिभट से युद्ध करने की इच्छा पूर्ण न कर सका; क्योंकि कोई प्रतिभट मिला ही नहीं), यह आपके चरणकमलों में अपने दस सिररूपी कमलों की बलि प्रदान करने में प्रवृत्त आप में अविचल भक्ति का ही प्रभाव है'।। 11 ।।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः।। 12 ।।

'हे त्रिपुरारि! आपकी सेवा से रावण की भुजाओं में शक्ति प्राप्त हुई थी। अभिमान में आकर वह अपना भुजबल आपके निवास-स्थान कैलास के उठाने में भी तौलने लगा, पर आपने जो पैर के अँगूठे की नोक से जरा-सा कैलास को दबा दिया तो उस रावण की प्रतिष्ठा (स्थिति) पाताल में भी दुर्लभ हो गयी। (वह नीचे-ही-नीचे खिसकता चला गया।) प्रायः यह निश्चित है कि नीच व्यक्ति समृद्धि को पाकर मोह में फँस जाता है (कृतघ्न हो जाता है)'।। 12 ।।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः।। 13 ।।

'हे वरदानी शङ्कर! त्रिभुवन को वशवर्ती बनानेवाले बाणासुर ने इन्द्र की अपार (परमोच्च) सम्पत्ति को भी जो अपने समक्ष नीचा कर दिया, वह आपके चरणों के शरणागत (सेवक) उस बाणासुर के विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि आपके समक्ष सिर झुकाना (नतमस्तक होना) किसकी (किस-किस विषय की) उन्नति के लिये नहीं होता? अर्थात् आपके चरणों में सिर झुकाने से सबकी सब प्रकार की उन्नति होती है'।। 13 ।।

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः।। 14 ।।

'हे त्रिनेत्र शंकर! समुद्रमन्थन से उत्पन्न विष की विषम ज्वाला से असमय में ब्रह्माण्ड के नाश के भय से चकित देवों और दानवों पर दयार्द्र होकर विषपान करनेवाले आपके कण्ठ में जो कालापन (नीला धब्बा) है, वह क्या आपकी शोभा नहीं बढ़ा रहा है। (अर्थात् महोपकार के कार्य से उत्पन्न होने के कारण और अधिक शोभा बढ़ा रहा है।) वस्तुतः संसार के भय को दूर करने के स्वभाववाले महापुरुषों का विकार भी प्रशंसनीय होता है'।। 14 ।।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः।। 15 ।।

'हे जगदीश! जिस कामदेव के बाण देव, असुर एवं नरसमूहरूप विश्व में नित्य विजेता रहे, कहीं भी असफल होकर नहीं लौटते थे, वही कामदेव जब आपको अन्य देवताओं के समान (जेय)

समझने लगा, तब आपके देखते ही वह स्मृतिमात्र शेष रह गया। (भस्म हो गया) और (सच है कि) जितेन्द्रियों का अपमान (उन्हें विचलित करने का उपक्रम) कल्याणकारी नहीं (अपितु घातक) होता है'।। 15 ।।

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।। 16 ।।

'हे ईश! जब आप ताण्डव(नर्तन) करते हैं तब आपके पैरों के आघात(चोट) से पृथ्वी अचानक संशय(संकट) को प्राप्त हो जाती है; आकाशमण्डल के ग्रह-नक्षत्र-तारे आपकी घूमते हुए भुजदण्ड(की चोट) से पीड़ित हो जाते हैं(अतः आकाश-मण्डल भी संकटग्रस्त हो जाता है)। स्वर्ग आपकी खुली हुई (बिखरी) जटाओं के किनारों की चोट से बारम्बार दुःखद स्थिति को प्राप्त हो जाता है। यद्यपि आप जगत् की रक्षा के लिये ही ताण्डव करते हैं; फिर भी आपकी प्रभुता(तो) वाम(क्षोभद) हो ही जाती है(सच है सम्पत्तिवाले का उचित कार्य भी विक्षोभ उत्पन्न कर देता है)'।। 16 ।।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः।। 17 ।।

'हे जगदीश! समस्त आकाश में फैले तारों के सदृश फेन की शोभावाला जो गङ्गाजल का प्रवाह है, वह आपके सिर पर जलबिन्दु के समान (छोटा) दिखायी पड़ा और (सिर से नीचे गिरने पर) उसी जलबिन्दु ने समुद्ररूपी करधनी(वलय) के भीतर संसार को द्वीप के समान बना दिया। बस, इसी से आपका दिव्य शरीर सर्वोत्कृष्ट है-यह अनुमेय हो जाता है'।। 17 ।।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलुपरतन्त्राः प्रभुधियः।। 18 ।।

'हे परमेश्वर! त्रिपुरासुररूपी तृण को दग्ध करने के इच्छुक आप ने पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथि, सुमेरु पर्वत को धनुष, चन्द्र और सूर्य को रथ के दोनों चक्के और चक्रपाणि विष्णु को (जो) बाण बनाया, (तो) यह सब आडम्बर (समारम्भ) करने का क्या प्रयोजन था? (सर्वसमर्थ आप उसे अपने इच्छामात्र से जला सकते थे) निश्चय ही अपने वशवर्ती (हाथ में स्थित) खिलौनों से खेलती

हुई ईश्वर की बुद्धि पराधीन नहीं होती(अर्थात् वह स्वतन्त्ररूप से अपने खिलौनों से खेलती रहती है)'।। 18 ।।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो –
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।। 19 ।।

'हे त्रिपुरारि! भगवान् विष्णु ने आपके चरणों में एक हजार कमल चढ़ाने का संकल्प किया था। उनमें जो एक कमल कम पड़ गया तो उन्होंने अपना ही नेत्रकमल उखाड़ कर चढ़ा दिया। बस, उनकी यही भक्ति की पराकाष्ठा सुदर्शन चक्र का स्वरूप धारण कर त्रिभुवन की रक्षाके लिये सदा जागरूक है(भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर श्रीविष्णु को चक्र प्रदान कर दिया था, जो विश्वका संरक्षण अनुग्रह-निग्रह-द्वारा करता है)'।। 19 ।।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः।। 20 ।।

'हे त्रिपुरारि! (बिना फल दिये ही) यज्ञादि के समाप्त हो जाने पर यज्ञकर्ताओं का यज्ञफल से सम्बन्ध करने के लिये (फल दिलाने के लिये) आप तत्पर रहते हैं। कर्म तो करने के बाद नष्ट हो जाता है (वह जड़ है) अतः चेतन परमेश्वर की आराधना के बिना वह नष्ट कर्म फल देने में समर्थ नहीं होता है। अतः आपको यज्ञों में फल देने में समर्थ दाता देखकर पुण्यात्मा लोग वेदवाक्यों में श्रद्धा-विश्वास रखकर (यज्ञ-) कर्म में तत्पर रहते हैं'।। 20 ।।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता –
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः।। 21 ।।

'हे शरणदाता शङ्कर! कार्य में कुशल प्रजाजनों का स्वामी प्रजापति दक्ष यज्ञ का यजमान (क्रतुपति) बना था। त्रिकालदर्शी ऋषिगण याज्ञिक (यज्ञ करानेवाले होता आदि) थे। देवगण यज्ञ के समान्य सदस्य थे। फिर भी यज्ञ के फल के वितरण के व्यसनी आप से ही यज्ञ का विध्वंस हो गया। अतः यह निश्चित है कि अश्रद्धा से किये गये यज्ञ (कर्म) कर्ता के लिये! विनाशक ही सिद्ध होते हैं(दक्ष ने श्रद्धावर्जित यज्ञ किया था)'।। 21 ।।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः।। 22 ।।

'हे स्वामिन्! (एक बार) कामुक ब्रह्मा ने अपनी दुहिता से हठपूर्वक रमण करने की इच्छा की। वह लज्जा से मृगी बनकर भागी; तब ब्रह्मा भी मृग बनकर उसके पीछे दौड़े। आपने भी उन्हें दण्ड देने के लिये मृग के शिकारी के वेग के समान हाथ में धनुष लेकर बाण चला दिया। स्वर्ग में भी जाने पर ब्रह्मा आपके बाण से भयभीत हो रहे हैं। उन्हें बाण ने आज भी नहीं छोड़ा है; अर्थात् ब्रह्मा 'मृगशिरा' नक्षत्र बनकर भागे तो बाण 'आर्द्रा' नक्षत्र बनकर आज भी पीछा करता है(ये दोनों आकाशमण्डल में आगे-पीछे देखे जा सकते हैं)'।। 22 ।।

(यह पौराणिक कथा है कि एक बार ब्रह्मा अपनी दुहिता सन्ध्या को अत्यन्त रूप-लावण्यवती देखकर मोहित हो गये। उन्होंने उपगमन करना चाहा। सन्ध्या लज्जा के मारे मृगी बनकर भाग चली। ब्रह्मा ने मृगरूप बना लिया और पीछा किया। इस अनर्थ को देखकर भगवान् भूत-भावन ने प्रजानाथको दण्डित करने के लिये पिनाक चढ़ाकर बाण छोड़ दिया। उससे पीड़ित तथा लज्जित होकर ब्रह्मा मृगशिरा नक्षत्र हो गये। फिर रुद्र का बाण भी आर्द्रा नक्षत्र होकर उनके पीछे भाग में लग गया। वह आज भी उनके पीछे लगा हुआ दीखता है।)

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः।। 23 ।।

'हे त्रिपुरारि! हे यमनियमपरायण! हे वरद शङ्कर! 'अपने सौन्दर्य से शिव पर विजय प्राप्त कर लूँगा'-इस सम्भावना से हाथ में धनुष उठाये हुए कामदेव को सामने ही तुरन्त आपके द्वारा तिनके की भाँति भस्म होता हुआ देखकर भी यदि देवी (पार्वतीजी) अर्धनारीश्वर (आधे शरीरमें पार्वती को स्थान देने) के कारण आपको स्त्रीभक्त जानती हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि स्त्रियाँ (स्वभावतः भावुक होने के कारण) मोहग्रस्त होती हैं'।। 23 ।।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि।। 24 ।।

'हे कामरिपु! हे वरद शङ्करजी! आप श्मशानों में क्रीड़ा करते हैं, प्रेत-पिशाचगण आपके साथी हैं, चिता की भस्म आपका अङ्गराग है, आपकी माला भी मनुष्य की खोपड़ियों की है। इस प्रकार यह सब आपका अमङ्गल स्वभाव (स्वाँग) देखने में भले ही अशुभ हो, फिर भी स्मरण करनेवाले भक्तों के लिये तो आप परम मङ्गलमय ही हैं'।। 24 ।।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्।। 25 ।।

'हे प्रभो! (शम-दम आदि साधनों से सम्पन्न) यमीलोग शास्त्रोपदिष्ट विधि से-वायु रोक कर (प्राणायाम कर) हृदयकमल में बहिर्मुखी (संकल्प-विकल्पात्मक) मन को सभी वृत्तियों से शून्य करके अपने भीतर जिस किसी विलक्षण (आनन्दरूप परब्रह्म चिन्मात्र) तत्त्व का दर्शन कर रोमाञ्चित हो जाते हैं और उनकी आँखें आनन्द के आँसुओं से भर जाती हैं, उस समय मानो वे अमृत के समुद्र में अवगाहन कर दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं; वह निर्गुण आनन्दस्वरूप ब्रह्म निश्चयरूप से आप ही हैं'।। 25 ।।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योमत्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि।। 26 ।।

'हे भगवन्! परिपक्व बुद्धिवाले प्रौढ़ विद्वान्-आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, आत्मा हैं-इस प्रकार की सीमित अर्थयुक्त वाणी आपके विषय में कहते रहे हैं; पर हम तो विश्व में ऐसा कोई तत्त्व (वस्तु) नहीं देखते (जानते) जो स्वयं साक्षात् आप न हों'।। 26 ।।

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्।। 27 ।।

'हे शरण देनेवाले! ओम्-यह शब्द अपने व्यस्त (पृथक्-पृथक् अक्षरवाले) अकार, उकार, मकाररूप से तीनों वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीनों अवस्था (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति), तीनों लोक (स्वर्ग-भूमि-पाताल), तीनों देवता (ब्रह्मा-विष्णु-महेश), तीनों शरीर (स्थूल-सूक्ष्म-कारण),

तीनों रूप (विश्व-तैजस-प्राज्ञ) आदि के रूप में आपका ही प्रतिपादन करता है तथा अपने अवयवों के समष्टि-(संयुक्त-समस्त-) रूप (ओम्) से निर्विकार निष्कल तीन अवस्था एवं त्रिपुटियों (ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान) के भेद से रहित आपके तुरीय(चतुर्थ) स्वरूप की सूक्ष्म ध्वनियों से ग्रहण कर प्रतिपादन करता है(ॐ आपके स्वरूप का सर्वतः निर्वचन करता है)'।। 27 ।।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते।। 28 ।।

'हे महादेव! आपके जो आठ अभिधान (नाम)-भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम, ईशान-हैं, उनमें प्रत्येक में वेदमन्त्र भी पर्याप्त मात्रा में विचरण करते हैं और वेदानुगामी पुराण भी इन नामें में विचरते हैं; अर्थात् वेद-पुराण सभी उन आठों नामों का अतिशय प्रतिपादन करते हैं। अतः परम प्रिय एवं प्रत्यक्ष समस्त जगत् के आश्रय आपको मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ'।। 28 ।।

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति सर्वाय च नमः।। 29 ।।

'हे अतिनिकटवर्ती और एकान्त (निर्जन) वन-विहार के प्रेमी! आपको प्रणाम है; अति दूरवर्ती आपको प्रणाम है। हे कामारि! अति लघु (सूक्ष्मरूपधारी) आपको प्रणाम है। हे अति महान्! आपको प्रणाम है। हे त्रिनेत्र! वृद्धतम आपको नमस्कार है; अत्यन्त युवक आपको प्रणाम है। सर्वस्वरूप आपको नमस्कार है; परोक्ष, प्रत्यक्ष पद से परे, अनिर्वचनीय, सबके अधिष्ठानस्वरूप आपको नमस्कार है'।। 29 ।।

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः।। 30 ।।

'विश्व की सृष्टि के लिये रजोगुण की अधिकता धारण करनेवाले ब्रह्मा-रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। विश्व के संहार के लिये तमोगुण की अधिकता धारण करनेवाले हर-(रुद्र-) रूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। समस्त जीवों के सुख (पालन) के लिये सत्त्व-गुण की अधिकता धारण करनेवाले विष्णुरूपधारी आपको बारम्बार नमस्कार है। स्वयं प्रकाश मोक्ष के लिये

त्रिगुणातीत, समस्त द्वैत से रहित मङ्गलमय अद्वैत (आप) शिव को बार-बार नमस्कार है'।। 30 ।।

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम्।। 31 ।।

'हे वरद शिव! (अविद्या आदि) कष्टों के वशीभूत (अल्पशक्तियुक्त) कहाँ तो यह मेरा चित्त और कहाँ सम्पूर्ण गुणों की सीमा के बाहर पहुँची सदा (त्रिकाल) स्थायिनी आपकी ऋद्धि (विभूति)। (दोनों में बहुत असमानता है।) इसी भय से ग्रस्त आपके चरणों की भक्ति ने मुझे उत्साहित कर आपके चरणों में मुझसे वाक्यरूपी पुष्पोपहार, वाक्यकुसुमाञ्जलि, वाक्यचय (वाक्यसमूह) की स्तुतिरूपी अञ्जलि समर्पित करायी है'।। 31 ।।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।। 32 ।।

'हे ईश! यदि काले पर्वत के समान स्याही हो, समुद्र की दावात हो, कल्पवृक्ष की शाखाओं की कलम बने, पृथ्वी कागज बने और इन साधनों से यदि सरस्वती (स्वयं) सर्वदा (जीवनपर्यन्त) आपके गुणों को लिखें तब भी वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकेंगी'।। 32 ।।

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार।। 33 ।।

'इस प्रकार शिव के सभी गणों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने दैत्येन्द्रों, सुरेन्द्रों एवं मुनीन्द्रों से पूजित, समस्त गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी निर्गुण जगदीश्वर चन्द्रशेखर भगवान् शिवजी के इस सुन्दर स्तोत्र को बड़े छन्दों में (स्तुति-हेतु) बनाया'।। 33 ।।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च।। 34 ।।

'जो व्यक्ति पवित्र अन्तःकरण से (हृदय से) परम भक्ति के साथ भगवान् शंकर के इस प्रशंसनीय स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह इस लोक में पर्याप्त धन एवं आयु को पाता है, पुत्रवान् और यशस्वी होता है तथा (मृत्यु के बाद) शिव-लोक को प्राप्त कर शिव के समान (आनन्दमग्न) रहता है'।। 34 ।।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।। 35 ।।

'महेश से बढ़कर (उत्तम) कोई देवता नहीं है, (इस) शिवमहिम्नःस्तोत्र से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोरमन्त्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं होता है'।। 35 ।।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।। 36 ।।

'मन्त्र आदि की दीक्षा, दान, तप, तीर्थाटन, ज्ञान तथा यज्ञादि-ये सब शिवमहिम्नःस्तोत्र की सोलहवीं कला (अंश) को भी नहीं पा सकते'।। 36 ।।

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः।। 37 ।।

'बालचन्द्र को सिर पर धारण करनेवाले देवाधिदेव महादेव का पुष्पदन्तनामक एक दास, जो सभी गन्धर्वों का राजा था, इन शिवजी के कोप से अपने ऐश्वर्य से च्युत हो गया था।(उसके बाद) उसने इस परम दिव्य शिवमहिम्नःस्तोत्र की रचना की(जिससे पुनः उसने उनकी कृपा प्राप्त की)'।। 37 ।।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम्।। 38 ।।

'यदि मनुष्य हाथ जोड़कर एकाग्रचित्त से देवताओं, मुनियों के पूज्य, स्वर्ग एवं मोक्ष को देने-वाले, पुष्पदन्तरचित इस अमोघ (अवश्य फल देनेवाले) स्तोत्र का पाठ करता है तो वह किन्नरों से स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ भगवान् शिव के समीप (शिवलोक में) पहुँच जाता है'।। 38 ।।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम्
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम्।। 39 ।।

'पुष्पदन्त-रचित यह सम्पूर्ण स्तोत्र (आदि से अन्ततक) पवित्र है, अनुपम है, मनोहर है, शिव (मङ्गलमय) है। इसमें ईश्वर (शिव) का वर्णन है'।। 39 ।।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः।। 40 ।।

'उस पुष्पदन्त ने यह शिवमयी पूजा श्रीमान् शंकर के चरणों में समर्पित की है। उसी प्रकार मैंने भी (पाठरूपी पूजा) समर्पित की है। अतः इससे सदाशिव मुझपर (भी) प्रसन्न हों'।। 40 ।।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः।। 41 ।।

'हे महेश्वर! मैं आपका तत्त्व (वास्तविकरूप) नहीं जानता, आप कैसे हैं-इसका ज्ञान मुझे नहीं है। आप चाहे जैसे हों, वैसे ही आपको बारम्बार प्रणाम है'।। 41 ।।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते।। 42 ।।

'जो मनुष्य शिवमहिम्नःस्तोत्र का पाठ एक समय, दोनों समय या तीनों समय करेगा, वह समस्त पापों से छुटकारा पाकर शिवलोक में पूजित होगा'।। 42 ।।

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः।। 43 ।।

'पुष्पदन्त के मुखकमल से निकले हुए पापहारी शिवजी के प्रिय इस स्तोत्र को कण्ठस्थ (याद) कर एकाग्रचित्त (मनोयोग) से पाठ करने से समस्त प्राणियों के स्वामी महेश बहुत प्रसन्न होते हैं'।। 43 ।।

।। शिवमहिम्नःस्तोत्र सम्पूर्ण ।।

❁❁❁❁❁❁

अन्यत्र किया हुआ पाप तीर्थ में जाने पर कम हो जाता है; किन्तु तीर्थ का किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं नहीं छूटता।

यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम्।
न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति

(पद्ममहापु. सृष्टिखण्ड 29/228, संक्षिप्त पद्मपुराण, पृ. 113 से उद्धृत)